नेहरू के बिना हम अजनबी देश में होते

राजेंद्र माथुर

सुकर्णो, नासर, टीटो आदि ने अपनी लोकप्रियता का क्या किया? देश के धीमेपन से असंतुष्ट जवाहरलाल के सामने क्या यह विकल्प नहीं रहा होगा कि लोकतंत्र को एक तरफ रखकर कुछ साल चाबुक चलाया जाए। यह कहा जा सकता है कि लोकतंत्र के अलावा कोई और प्रणाली होती तो वह भारत जैसे बेमेल देश को एक नहीं रख पाती। तानाशाही का प्रेशर कुकर होता तो देश जल्दी टूटता. लेकिन यह दृष्टि तो 1970 या 1980 की है। 1947 में यह माना जा सकता था कि लोकतंत्र में इतना हंगामा है, खींचतान है, दंगे-फसाद हैं, अराजकता है कि भारत जैसे भानुमती के कुनबे में यह खुराफाती चीज अगर छोड़ दी गई, तो न टूटने वाला देश भी टूट जाएगा। आखिर इसी बूते पर तो चर्चित आदि कहा करते थे कि अंग्रेजों के जाने के बाद भारतवासी स्वराज नहीं चला पाएंगे। स्वराज के बारे में हम भारतीयों का हीनभाव ही तानाशाही को जन्म दे सकता था। उस नियति से हम बचे, इसका सारा श्रेय नेहरू को है।

जवाहरलाल नेहरू न होते तो भारत कैसा होता, इस सवाल को टटोलते हुए यह लेख चर्चित पत्रकार राजेंद्र माथुर ने 1989 में उनकी जन्म शताब्दी के मौके पर लिखा था ।

बीसवीं सदी में गांधी के बाद यदि किसी एक हिंदुस्तानी का इस देश की याद्दाश्त पर सबसे ज्यादा हक और कर्ज है, तो वह शख्स जवाहरलाल नेहरू ही है। नेहरू यदि आजादी के आंदोलन के दिनों में गांधी के सिपाही नहीं होते, तो हमारे स्वतंत्रता आंदोलन का नक्शा अलग होता। और यदि आजादी के बाद के 17 वर्षों में वे भारत के प्रधानमंत्री नहीं होते, तो आज भारत का सामाजिक और राजनीतिक भूगोल वह नहीं होता जो आज है। तब इस देश की राजनीति के नदी, पहाड़ और जंगल सब अलग हो जाते, और हम मानो एक अलग ग्रह पर सांस ले रहे होते। लाखों लोगों के मन में आज भी एक गहरी शिकायत है कि इस नेहरू निर्मित भारत के पर्यावरण में सांस लेने के लिए परमपिता परमात्मा ने हमें क्यों जन्म दिया है। काश इस देश का पर्यावरण कुछ और होता। लेकिन यह शिकायत भी जवाहरलाल नेहरू की विश्वकर्मा-भूमिका को एक गहरी श्रद्धांजलि ही है, क्योंकि अंतत: यह उस भारत की कोख में लौट जाने की कामना है, जिसे किसी ने देखा नहीं है, लेकिन जिसके बारे में कोई भी व्यक्ति कुछ भी कल्पना कर सकता है।

बगावती शिष्यतंत्र

जवाहरलाल नेहरू जैसा सिपाही यदि गांधी को आजादी के आंदोलन में नहीं मिलता, तो 1927-28 के बाद भारत के नौजवानों को अपनी नाराज और बगावती अदा के बल पर गांधी के सत्याग्रही खेमे में खींचकर लाने वाला और कौन था? नेहरू ने उन सारे नौजवानों को अपने साथ लिया जो गांधी के तौर-तरीकों से नाराज थे, और बार-बार उन्होंने लिखकर, बोलकर, अपनी असहमति का इजहार किया। उन्होंने तीस की उस पीढ़ी को जबान दी जो बोलशेविक क्रांति से प्रभावित होकर कांग्रेस के बेजुबान लोगों को लड़ाकू हथियार बनाना चाहती थी। लेकिन यह सारा काम उन्होंने कांग्रेस की केमिस्ट्री के दायरे में किया और उसका सम्मान करते हुए किया। यदि वे 1932-33 में सनकी लोहियावादियों की तरह बरताव करते, और अपनी अलग समाजवादी पार्टी बनाकर कांग्रेस से नाता तोड़ लेते, तो सुभाषचंद्र बोस की तरह कटकर रह जाते। उससे समाजवाद का तो कोई भला होता नहीं, हां, गांधी की फौज जरूर कमजोर हो जाती। गांधी से असहमत होते हुए भी नेहरू ने गांधी के सामने आत्मसमर्पण किया, क्योंकि अपने को न समझ में आने वाले जादू के सामने अपने को बिछा देने वाला भारतीय भक्तिभाव नेहरू में शेष था, और अपने अक्सर बिगड़ पड़ने वाले पट्ट-शिष्य से लाड़ करना गांधी का आता था। बकरी का दूध पीने वाला कोई सेवाग्रामी जूनियर गांधी तीस के दशक में न तो युवक हृदय सम्राट का पद अर्जित कर सकता था, और न महात्मा मोहनदास उसे अपना उत्तराधिकारी घोषित कर सकते थे, क्योंकि आंख पर पट्टी बांधकर लीक पर चलने वाले शिष्यों की सीमा महात्माजी खूब समझते थे। नेहरू और गांधी के इस द्वंद्वात्मक सहयोग ने आजादी के आंदोलन के ताने-बाने को एक अद्भुत सत्ता दी और गांधी का जादू नेहरू के तिलस्म से जुड़कर न जाने कौन सा ब्रह्मास्त्र बन गया। खरा और सौ टंच सत्य जब दूसरे सौ टंच सत्य के साथ अपना अहं त्यागकर मिलता और घुलता है, तब ऐसे ही यौगिक बनते हैं, जैसे गांधी और नेहरू के संयोग से बने। उनकी तुलना आज के राजनीतिक जोड़तोड़ से कीजिए, तो आपको फर्क समझ में आ जाएगा।

नेहरू और गांधी के इस द्वंद्वात्मक सहयोग ने आजादी के आंदोलन के ताने-बाने को एक अद्भुत सत्ता दी और गांधी का जादू नेहरू के तिलस्म से जुड़कर न जाने कौन सा ब्रह्मास्त्र बन गया।

संक्षेप में, नेहरू की उपस्थिति के कंट्रास्ट के कारण गांधी का आंदोलन अधिक खिला, और चित्रोपम बना। राजेंद्र प्रसाद या राजाजी या किशोरीलाल मश्रूवाला अपने बूते पर गांधी की कशीदाकारी को वह रत्नजड़ित समृद्धि दे ही नहीं सकते थे, जो जवाहरलाल नेहरू ने उसे दी।

गांधी का भारत

1947 के बाद जवाहरलाल नेहरू भारत को उस रास्ते पर लेकर नहीं गए, जिस रास्ते पर महात्मा गांधी की सौ-साला जिंदगी में शायद वह जाता। वे ऐसा कर भी नहीं सकते थे, क्योंकि गांधी की अनुपस्थिति में गांधी का रास्ता किसी को मालूम नहीं था। खुद गांधी के जीते-जी किसी को पता नहीं होता था कि गांधी का अगला कदम क्या होगा। अपनी अंतरात्मा के टॉर्च से वे अंधेरे में अपना अगला कदम टटोलते थे, और यह टार्च नितांत निजी और वैयक्तिक होता था। कार्ल मार्क्स जैसा मामला महात्मा गांधी का नहीं था, जिन्हें अपने वैज्ञानिक विवेक सूर्य-प्रकाश में सारा भविष्य सामने नजर आ जाता था, और दूर, बहुत दूर, क्षितिज पर खड़ी मंजिल भी, और वहां पहुंचने का टेढ़ा-मेढ़ा रास्ता भी। गांधी को अंधेरे में अगले कदम के अलावा कुछ भी नजर नहीं आता था, और इतना देख पाना ही वे पर्याप्त मानते थे। इसलिए यह प्रश्न लगभग बेमतलब है कि जवाहरलाल गांधी के रास्ते पर चले या नहीं। हालांकि 1946 में गांधी कह रहे थे कि 1906 में छपी हिंद स्वराज नामक पुस्तक पर उन्हें आज भी आस्था है। लेकिन यह कहा जा सकता है कि गांधी सौ साल जीते, तो वे हिंद स्वराज वाला हिंदुस्तान ही इस धरती पर उतारते या हिंदुस्तान उन्हें इस अवतरण की इजाजत देता। (इजाजत भी तो महत्वपूर्ण है। आखिर गांधी और कांग्रेस के होते हुए पाकिस्तान बना कि नहीं?)

बागडोर और भूगोल

आजादी के बाद के वर्षों में यदि बागडोर नेहरू के हाथों में नहीं होती तो इस देश का राजनीतिक-सामाजिक भूगोल, उसकी नदी, जंगल और पहाड़ किस माने में भिन्न होते?

सबसे पहले तो इसी बात का श्रेय नेहरू को दें कि उन्होंने अपने चरित्र और विचारों के विपरीत कांग्रेस को बनाए रखा। पहले वे अक्सर लिखा करते थे कि आजादी की लड़ाई सफल होने के बाद कांग्रेस जैसे सर्वदलीय संयुक्त मोर्चे की कोई जरूरत नहीं रह जाएगी। वह टूटेगी और अलग-अलग विचारधारा वाली पार्टियों में बंट जाएगी। जब तक अंग्रेजों से लड़ाई चल रही है, तब तक बिड़ला-बजाज-साराभाई और मिल मजदूर और जमींदार और किसान इकट्ठे होकर कांग्रेस में रह सकते हैं। लेकिन उसके बाद इतने बेमेल, निहित स्वार्थों की पार्टी सरकार कैसे चलाएगी? वह उत्तर जाएगी या दक्षिण? वह गरीबों का साथ देगी या अमीरों का?

गांधी के दिमाग में भी यह प्रश्न उठा था, लेकिन वे शायद सत्ता कांग्रेस के मुकाबले एक रचनात्मक, सेवामुखी कांग्रेस कायम करने की बात सोच रहे थे। आंदोलन-विहीन दिनों में, असेंबलियों के दिनों में कांग्रेस से दूर हटने की कोशिश करना गांधीजी का एक रिफलेक्स-कर्म था, जो बीस-तीस और चालीस के दशक में बार-बार देखा जा सकता है। तीस के मध्य में तो उन्होंने कांग्रेस की चवन्नी सदस्यता तक छोड़ दी थी।

कांग्रेस को कायम रखकर नेहरू ने विलक्षण समझ का परिचय दिया, यह इसी से स्पष्ट है कि आजादी के 42 वर्ष बाद भी इस देश में पश्चिमी तर्ज की पार्टियां नहीं बन पाई हैं और कांग्रेस देश की अधिकतम राष्ट्रीय सर्वानुमति का दूसरा नाम हो गया है। कांग्रेस का विविधता भारत की विविधता का राजनीतिक प्रतिरूप है, और जैसे हिंदू मशीन में बेमेल चीजों को पचाकर भी चलते रहने की ताकत है, उसी तरह कांग्रेसी मशीन में अंतर्द्वंद्वों को हजम करके देश को आगे ले जाने की ताकत है, यह बात नेहरू ने कभी लिखी या कही नहीं, लेकिन इस समझ के बिना इतने साल उनका काम कैसे चल सकता था?

इस माने में नेहरू ने स्वतंत्रता के बाद कांग्रेस की सार्थकता का पुनराविष्कार किया। उन्होंने पाया कि कांग्रेस से टूटी कोई एकांगी पार्टी देश को जोड़े रखने और आगे ले जाने का काम नहीं कर सकेगी। नेहरू की इस स्थापना पर देश ने एक मुहर नेहरू की मौत के बाद 1971 में लगाई, जब मरणासन्न कांग्रेस को उसने फिर से जिलाकर खड़ा कर दिया। इससे लगता है कि गांधी यदि कांग्रेस को खत्म कर देते, भारत की जनता उसे किसी न किसी शक्ल में पुनर्जीवित कर देती।

नेहरू के बिना क्या भारत वैसा लोकतांत्रिक देश बन पाता, जैसा कि वह आज है? आपको 1947 के किस नेता में लोकतंत्र की बुनियादी आजादियों के प्रति वह सम्मान नजर आता है जो नेहरू में था? हरिजन से रक्त में एकता महसूस करने वाले नेता कितने थे? धर्म के ढकोसलों से नफरत और सच्ची रूहानियत के प्रति लगाव कितनों में था? विज्ञान के प्रति इतना भोला उत्साह आप उस जमाने में और कहां पाते हैं? भारत के आर्थिक विकास के बारे में क्या किसी और नेता के पास दृष्टि थी? भारत की सारी विविधताओं को इतना स्नेह क्या किसी और नेता ने दिया? नेहरू नहीं होते तो विभाजन के तुरंत बाद क्या भारत हिंदू राष्ट्र बनने से बच पाता?

गांधी की जगह गणदेवता

आपका 15 अगस्त के बाद लोकतंत्र होगा, यह इस देश की जन्मपत्री में तो नहीं लिखा था। अनुमान लगाना व्यर्थ है, लेकिन सोचिए कि यदि सरदार पटेल को स्वाधीनता के बाद 17 साल तक जवाहरलाल नेहरू की लोकप्रियता और उनका पद मिला होता तो क्या वे माओ त्से तुंग या स्तालिन के भारतीय संस्करण नहीं हो जाते? सुकर्णो, नासर, टीटो, अंक्रूमा आदि ने अपनी लोकप्रियता का क्या किया? देश के धीमेपन से असंतुष्ट जवाहरलाल के सामने क्या यह विकल्प नहीं रहा होगा कि लोकतंत्र को एक तरफ रखकर कुछ साल चाबुक चलाया जाए, ताकि देश तेज दौड़कर एक बार सबके साथ आ सके? यदि वे चाबुक चलाते तो क्या एक नशीला उत्साह सारे देश में पैदा नहीं होता, जिसके रहते लोकतंत्र की हिमायत एक जनद्रोही हरकत नजर आती?

लेकिन जैसे गांधी के सामने नेहरू ने अहंविहीन समर्पण कर दिया, उसी तरह भारत के लोकतंत्र के सामने उन्होंने हमेशा अहंविहीन समर्पण किया। गांधी की जगह गणदेवता ने ले ली। कहा नहीं जा सकता कि नेहरू नहीं होते तो भी ऐसा ही होता। और यदि भारत में लोकतंत्र नहीं होता, तो क्या हम अपने-आपको एक बिलकुल अलग देश में नहीं पाते?

सुकर्णो, नासर, टीटो आदि ने अपनी लोकप्रियता का क्या किया? देश के धीमेपन से असंतुष्ट जवाहरलाल के सामने क्या यह विकल्प नहीं रहा होगा कि लोकतंत्र को एक तरफ रखकर कुछ साल चाबुक चलाया जाए।

यह कहा जा सकता है कि लोकतंत्र के अलावा कोई और प्रणाली होती तो वह भारत जैसे बेमेल देश को एक नहीं रख पाती। तानाशाही का प्रेशर कुकर होता तो देश जल्दी टूटता. लेकिन यह दृष्टि तो 1970 या 1980 की है। 1947 में यह माना जा सकता था कि लोकतंत्र में इतना हंगामा है, खींचतान है, दंगे-फसाद हैं, अराजकता है कि भारत जैसे भानुमती के कुनबे में यह खुराफाती चीज अगर छोड़ दी गई, तो न टूटने वाला देश भी टूट जाएगा। आखिर इसी बूते पर तो चर्चित आदि कहा करते थे कि अंग्रेजों के जाने के बाद भारतवासी स्वराज नहीं चला पाएंगे। स्वराज के बारे में हम भारतीयों का हीनभाव ही तानाशाही को जन्म दे सकता था। उस नियति से हम बचे, इसका सारा श्रेय नेहरू को है।

आर्थिक दृष्टि

कांग्रेस की आर्थिक दृष्टि न गांधीवादी थी, न नेहरूवादी थी। इसलिए कुछ राज्यों के जमींदारी उन्मूलन कार्यक्रमों को छोड़ दें, तो भारत के तत्कालीन मुख्यमंत्रियों में हम किसी आर्थिक लक्ष्य की ओर तेजी से बढ़ने की कोई छटपटाहट नहीं पाते। अपनी कुरसी पर बैठ पाना ही उनके लिए इतिश्री थी। इसलिए कई जगह कांग्रेस का राज पुलिस-राज होता जा रहा था। सिर्फ नेहरू में देश के पिछड़ेपन का एहसास था, एक दृष्टि थी, और छटपटाहट थी। गांधी की तरह एक सेवामुखी कांग्रेस तो उन्होंने नहीं बनाई, और न कम्यूनिस्टों की तरह एक समर्पित काडर तैयार किया, लेकिन अपनी लोकतांत्रिक सरकार की सारी शक्ति उन्होंने विकास के एक मॉडल पर अमल करने के लिए झोंक दी। बड़े बांध, सिंचाई योजनाएं, अधिक अन्न उपजाओ, वन महोत्सव, सामुदायिक विकास, राष्ट्रीय विस्तार कार्यक्रम, पंचवर्षीय योजना, भारी उद्योग, लोहे और बिजली और खाद के कारखाने, नए स्कूल और अफसर, लाखों सरकारी नौकरियां, समाजवादी समाज संरचना, यह सारा सिलसिला जवाहरलाल नेहरू की अदम्य ऊर्जा से शुरू हुआ।

नेहरू की समाजवादी दृष्टि का यहां भारत के मध्यमवर्ग की आकांक्षाओं के साथ गजब का मेल हुआ। स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लेकर भारत पर राज करने वाला यह मध्यम वर्ग विचारों से समाजवादी था, लेकिन संस्कारों से उसे ऐसी सुरक्षित नौकरी की जरूरत थी, जिसमें पहली तारीख को वेतन मिल जाए लेकिन अपनी सफेद कॉलर मैली न करनी पड़े। कल-कारखानों से, व्यवसाय-प्रबंध से, उत्पादकता की चुनौतियों से हाथ काले करने वाले हुनर से उसे कोई लगाव नहीं था। उसे सिर्फ निगरानी और अफसरी की चाह थी, जो समाजवाद के अंतर्गत शुरू हुई परमिट-लायसेंस-कोटा प्रणाली ने पूरी की। समाजवाद ने कभी अपनी कमाई न बताने वाले भारत के बनियों को प्रेरित किया कि वे भारत के प्रायवेट सेक्टर का विकास चोरी-चोरी, काले धन का निर्माण करते हुए करें.

लेकिन नेहरू के जमाने में यदि इन्फ्रास्ट्रक्चर पर इतना धन खर्च न हुआ होता, यदि भारी उद्योग की नींव न पड़ी होती, यदि रासायनिक खाद के कारखाने न खुले होते, तो क्या अस्सी के दशक की अभूतपूर्व, राजीवयुगीन समृद्धि यह देश देख पाता? भारत के देसी पूंजीपतियों में तो यह सामथ्य नहीं थी कि मल्टीनेशनल कंपनियों की मदद के बगैर वे भारत को आत्मनिर्भर समृद्धि के इस बिंदु तक पहुंचा पाते।

चीन और रूस के उदाहरणों से स्पष्ट है कि करोड़ों लोगों को जेल में ठूंसे बगैर, या जान से मारे बगैर या उन्हें सजा काटने के लिए अरुणाचल भेजे बगैर जो आतंकविहीन, आर्थिक सरप्लस भारत ने पैदा किया है, और इस सरप्लस के निवेश से जो प्रगति की है, यह आश्चर्यजनक रही है। इतनी सीधी उंगली से इतना ज्यादा घी निकालने का काम किसी और देश ने किया हो तो कृपया नाम बताएं।

नेहरू नहीं होते तो हम या तो जापानी टूथपेस्ट खरीद रहे होते या हमारे वकीलों और प्रोफेसरों को कोई हुकूमत धान के खेत में अनुभव प्राप्त करने के लिए भेज देती। नेहरू के बिना हमारी रोजमर्रा की जिंदगी यहां भी अलग होती।

नया इंसान

और अंत में धर्मनिरपेक्षता। जब नेहरू इसकी चर्चा करते थे, तब दरअसल वे एक नया इंसान भारत की जमीन पर जन्मते देखना चाहते थे। वे ही क्यों, गांधी की भी सारी कोशिश भारत में एक नए मनुष्य को जन्म देने की थी। राममोहन राय से लेकर राममनोहर लोहिया तक हर महत्वाकांक्षी हिंदुस्तानी ने एक नए मनुष्य का सपना देखा है, और डेढ़ सौ साल पुरानी यह आदत पिछले बीस-पच्चीस वर्षों में ही विलुप्त हुई है।

नेहरू का नया मनुष्य रवींद्रनाथ ठाकुर की प्रसिद्ध कविता का मनुष्य है। लेकिन जो युगपुरुष एक नई मनुष्यता का स्वप्न पालता है, उसे समझ ही नहीं आता कि आदमी संकीर्ण क्यों है, क्षुद्र क्यों है, अंधविश्वासी क्यों है, नकली कसौटियों पर अपने आपको बांटने वाला और लड़नेवाला क्यों है, नफरत से अंधा होनेवाला क्यों है? हर मसीहा की कोशिश के बावजूद नया मनुष्य बार-बार पुराना होना क्यों पसंद करता है?

यह लंबा विषय है और हम नहीं जानते कि गांधी और नेहरू के होने का कोई असर हम पर पड़ा है या नहीं, और हम नए इंसान बने हैं या नहीं। लेकिन हम जैसे हैं, उससे बहुत बुरे नहीं हैं, तो इसका श्रेय शायद उन्हीं के प्रयासों को देना होगा।